RNI No. 26281/74 रजि. नं. पीबी/जेएल 001/2012-14

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

मूल्य : 2 रु.

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

जालन्धर

वर्ष–70, अंक : 11, 13/16 जून 2013 तदनुसार 3 आषाढ़ सम्वत् 2070 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

अतः आत्मा ही अमृत है

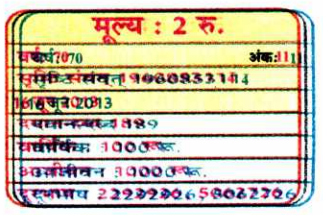

–ले० आचार्य भद्रसेन 182, शालीमार नगर, होशियारपुर

यहां का विचार्य आत्मा शब्द जब सदा रहने और हमेशा गतिशील होने के अर्थ में आता है, तब उस को अत् धातु से साधा जाता है। हां, जब इस के आधार पर अपने कर्मों के फल के अनुरूप अनेक शरीरों में जाने के भाव से जुड़ा होता है, वहां अत् धातु के साथ आ (ङ्) उपसर्ग पूर्वक दा धातु से भी बन सकता है, जिसका वहां भाव होगा उस-उस शरीर को ग्रहण करना, लेना। पर जब किसी शरीर या स्थल में व्याप्त होने की भावना होती है, तब वहां आप् (लृ) धातु से बनता है। हमारे साहित्य में आत्मा शब्द अनेकत्र इन अर्थों में दर्शाया गया है[1]।

दर्शन की दृष्टि से आत्मा शब्द का कोई एक अर्थ कहना हो, तो वह होगा– अपना आपा। हां, हर व्यक्ति अपनी योग्यता, विद्या, प्रतिभा के अनुरूप ही अपने आपे को समझता है, इसीलिए आत्मा शब्द अनेक अर्थों में आता है। अतः मैं कौन हूँ ? मेरा अपना आपा क्या है ? का उत्तर ही उस-उस की दृष्टि से आत्मा का स्वरूप है।

आज अपने आश्रम में एक दर्शन के प्राध्यापक आए हुए हैं। उन से आत्मा के सम्बन्ध में जब चर्चा चली, तो उन्होंने बताया, कि वाचस्पत्यम् कोश और सर्वदर्शनसंग्रह के शांकर दर्शन प्रकरण में एक सन्दर्भ है। जिस में दर्शाया गया है, कि किस-किस दार्शनिक की दृष्टि से आत्मा का क्या रूप, भाव, अभिप्राय है। जैसे कि–

लोकायत (चार्वाक) मत वाले मानते हैं, कि चैतन्य से युक्त देह ही आत्मा है। इन में से कुछ लोग इन्द्रियों को और कुछ लोग मन को आत्मा मानते हैं। बौद्धों का बोध इस तरह का है, कि प्रवाहयुक्त (सन्तान) और क्षणभंगुर विज्ञान ही आत्मा है। जैनों की प्रतिज्ञा है, कि देह जितने परिमाण वाला ही आत्मा है। नैयायिक आदि कहते हैं, कि जीवात्मा परमेश्वर से भिन्न है तथा कर्तृत्व आदि से युक्त है। सांख्य के एक वर्ग वाले कहते हैं, कि आत्मा (पुरूष) केवल भोक्ता है, कर्ता नहीं। उपनिषदों के कुछ अध्येताओं का कथन है, कि जीवात्मा चित् के रूप में कृर्तृत्वादि विशेषणों से रहित तथा परमात्मा से अभिन्न है। अतः इन सभी विचारकों की दृष्टि से अनेक गुणों, धर्मों वाला धर्मी आत्मा प्रसिद्ध है, परन्तु उस के विशेषणों में ही मतभेद है।

इस उद्धरण में सब से पहले यह बात सामने आती है, कि सामान्य जन देह को ही अपना आपा (आत्मा) समझते हैं। आज भी संसार में लाखों ऐसे लोग हैं, जो कि प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं और उस से जो कुछ भी सामने आता है। उसी को ही वे स्वीकार करते हैं और उसी में ही विश्वास रखते हैं। उन की दृष्टि से यह जीवित शरीर ही आत्मा है, क्योंकि यही सब कुछ करता हुआ स्पष्ट प्रतीत होता है। इस दृष्टि से ही यह सारा व्यवहार होता है, कि वह काणा है, वह सूरदास है, मैं गोरा, मोटा या पतला हूँ। अतः उन के विचार से 'हाथ कंगन को आरसी क्या' अर्थात् अपना आपा पूरी तरह से स्पष्ट है।

दर्शनों में इस विचारधारा को चार्वाक नाम दिया जाता है। चार्वाक दर्शन के अनुसार जो कुछ भी प्रत्यक्ष (आंख आदि इन्द्रिय से स्पष्ट) होता है, वही प्रमाण योग्य है। जैसे कि पृथिवी, जल, अग्नि और वायु ये चार ही भूत प्रत्यक्ष हैं। इन्हीं के मेल से संसार के सारे के सारे भौतिक पदार्थ बनते हैं। इन्हीं चारों के मेल से ही हमारा देह चेतनायुक्त होता है और यही अपना आपा है। जो कि देखने, बोलने आदि के सारे के सारे व्यवहार करता हुआ स्पष्ट प्रतीत होता है। जब तक इन चारों भूतों का मेल बना रहता है, तभी तक यह शरीर चेतनायुक्त या जीवित कहलाता है।

अपने आपे का प्रथम तथा प्रत्यक्ष अंश शरीर है। अतः सामान्य ढंग से सोचने वाले शरीर को ही अपना आपा समझ कर सर्वविध व्यवहार करते हैं। विशेष जन भी इस की उपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि हम सब का भौतिक और आध्यात्मिक सारा क्रियाकलाप शरीर पर ही निर्भर है। अपने आपे का प्रत्यक्ष तथा प्रथम अंश होने से शास्त्रों में अनेकत्र शरीर अर्थ में आत्मा शब्द का प्रयोग मिलता है[2]।

इस चर्चा की और सूक्ष्मता में जाने पर यह बात सामने आती है, कि आंख, कान आदि इन्द्रियां ही देखने-सुनने जैसे व्यवहार को करती हैं। यह शरीर तो केवल उन के रहने का आधारमात्र ही है। शरीर से होने वाले व्यवहारों को वस्तुतः वह-वह इन्द्रिय ही करती है। इसी लिए ही उस-उस इन्द्रिय का अपना-अपना विषय नित है, वह उस से भिन्न कार्य नहीं करती, जैसे आंख देखती ही है, सुनती नहीं। तभी तो जिस किसी इन्द्रिय के विकृत हो जाने पर देखने, सुनने का वह-वह व्यवहार नहीं होता। इन्द्रियों को आत्मा मानने पर ही अन्धा, गूंगा, बहरा सदृश कथन सार्थक सिद्ध होता है, अन्यथा शरीर तो स्पष्ट रूप में सामने होता है।

इन्द्रिय को आत्मा मानने पर कुछ कह सकते हैं, कि इन्द्रियां तो बहुत सारी हैं। इस तरह एक-एक शरीर में कितने-कितने आत्मा मानने पड़ेंगे। एक इन्द्रिय की बात दूसरी इन्द्रिय के अनुभव में तब नहीं आ सकती। पर हम अपने व्यवहार में देखते हैं कि कई बार हम हाथ से एक फल को छू कर उस के नर्म-सख्त स्पर्श का अनुभव करते हैं, आंख उसी के रंग तथा आकार को देखती है। नासिका उस की गन्ध को बताती है तथा जिह्वा उस का स्वाद बताती है। यह सारा अनुभव हमारे व्यवहार में अलग-अलग को नहीं होता, अपितु इन सब का सांझा अनुभव किसी एक को ही होता है। यदि ये सब इन्द्रियां स्वतन्त्र होतीं, तो एक के देखे का दूसरे के साथ ताल-मेल नहीं होना चाहिए था, पर व्यवहार में स्पष्ट झलकता है, कि इन इन्द्रियों से काम लेने वाला कोई एक है। जो इन सब के अनुभवों को जोड़कर सांझे रूप में बताता है।

इन्हीं विचारों को सामने रखकर ही कुछ विचारक कहते हैं, कि ये सारी इन्द्रियां मन के कारण ही अपना-अपना कार्य करती हैं। मन ही इन को उस-उस कार्य में लगाता है तथा इन द्वारा उपार्जित ज्ञान, अनुभव को सम्भालकर अपने पास रखता है। अतः मन ही शरीर में रखने वाला आत्मा है, शरीर इस के रहने का अधिष्ठान है तथा इन्द्रियां इस के उस-उस कार्य को करने के साधन (=औजार) हैं। शरीर में दीखने वाली सारी चेतना मन के कारण ही है, तभी तो कोई यह करता है। यह मेरी आंख है, यह मेरा हाथ है, या मैं अपनी आंख से देखता और कान से सुनता हूँ।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

1. अतति निरन्तरं कर्मफलानि प्राप्नोति, व्याप्नोति वा योनिसहस्राणि स आत्मा। 'यदाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयान् पुनः। यच्चास्य सततं भावः तस्मादात्मेति संज्ञितः॥' कौडिन्य 7.4; भाष्ये 5.3 पाशुपत शास्त्र वचन- वाचस्पत्यकोश।

2. ऐतरेय आरण्यक 1,2,3,5 और मनु. 12,2 में जहां आत्मा शब्द शरीर अर्थ में है वहां आयुर्वेद में भी अनेक प्रयोग मिलते हैं। ऐसे ही 'आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि' वचन प्रसिद्ध है, यहां पत्नी, धन का सम्बन्ध शरीर से ही है।

देवान् यज्ञेन बोधय (देवों को यज्ञ से जगाओ)

-ले० श्री सुरेश शास्त्री, सभा कार्यालय जालन्धर

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय।

आयुः प्राणं प्रजां पशुम् कीर्तिं यजमानं च वर्धय।।

(ब्रह्मणस्पते उत्तिष्ठ) हे ब्रह्मणस्पति उठ (देवान् यज्ञेन् बोधय) देवों को यज्ञों से जगा (आयुः प्राणं प्रजां पशुम् कीर्तिं यजमानम् च वर्धय) और आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति और यजमान को बढ़ा।

मंत्र में ब्रह्मणस्पति को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि हे ब्रह्मणस्पते उठो, यज्ञ से देवों को जगाओ और आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति और यजमान को बढ़ाओ। मंत्र का भाव भली-भांति जानने के लिए सर्वप्रथम हमें ब्रह्मणस्पति देव और यज्ञ इन तीनों के अर्थों पर विचार करना होगा।

ब्रह्मणस्पति के अर्थ जानने के लिए ब्रह्मण: और पति: इन दोनों पदों के अर्थ जानने की आवश्यकता है क्योंकि ब्रह्मण: पति: अर्थात् ब्रह्म का पति ब्रह्मणस्पति होता है। ब्रह्मन् शब्द के षष्ठि विभक्ति के एकवचन में ब्रह्मण: पद बना है। ब्रह्म शब्द वेद, ज्ञान, ब्राह्मण, अन्न और परमेश्वर आदि अनेक शब्दों में प्रयुक्त होता है। सामान्यतया बृहत्वान् ब्रह्म बड़ा होने से या वर्धक होने से ब्रह्म कहलाता है। पति के अर्थ स्वामी, रक्षक दो प्रसिद्ध ही हैं। इस प्रकार ब्रह्मणस्पति के अर्थ वेद रक्षक, ज्ञान रक्षक, यज्ञ रक्षक, अन्न रक्षक आदि हुए और साथ ही संवर्धन करने वाले महापुरूषों के रक्षक एवं स्वामी के भी समझने चाहिए।

देव शब्द के भी अनेक अर्थ होते हैं जैसा कि देव शब्द पर पहले विचार करते हुए स्पष्ट किया जा चुका है कि साधारणतया दिव्य गुण जिनमें हों या जो दूसरों को ज्ञान, धन, बल, प्रकाश आदि देते हों, उन्हें देव कहते हैं। इस प्रकार भौतिक एवं अभौतिक दोनों प्रकार के पदार्थ देव कहे जाते हैं। सूर्य, अग्नि, वायु, चन्द्र, इन्द्र, वरूण, विद्वान आदि के लिए देव शब्द का प्रयोग देखा जाता है।

मन्त्र में प्रयुक्त यज्ञ शब्द विशेष महत्व रखता है। यज्ञ शब्द संस्कृत की प्रसिद्ध यज देवपूजा संगतिकरणदानेषु धातु से बना है, जिसके तीन अर्थ हैं देवपूजा, संगतिकरण, दान। यज्ञ वह कर्म है जिसमें देवों की पूजा हो और साधु सन्त महात्माओं की संगति प्राप्त हो या पदार्थों की विषमता को दूर कर ,उनमें साम्यता अनुकूलता उत्पन्न की जावे तथा कर्त्तव्य की भावना से दूसरों की सहायतार्थ जीवनोपयोगी पदार्थों को दिया जाए। साधारणतया परोपकार के जितने भी कर्म हैं वे सब यज्ञ कहलाते हैं। परन्तु विशेष रूप से यज्ञ शब्द का प्रयोग अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त किये जाने वाले अग्निकर्मों के लिए ही होता है क्योंकि अग्नि को ही यज्ञ का पुरोहित कहा गया गया है। ऋग्वेद का प्रथम मंत्र इस बात की पुष्टि करता है-

अग्निमीडे पुरोहितम् यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।। इन सभी यज्ञों में अग्नि को नियमानुसार प्रज्जवलित किया जाता है और उसमें सुगंधित, रोगनाशक, पुष्टिकारक, तथा मिष्ट पदार्थों की आहुतियां दी जाती हैं और श्रद्धापूर्वक यज्ञकर्ताओं, साधु सन्त एवं विद्वानों का यथायोग्य सत्कार किया जाता है। इसका उद्देश्य जल वायु और अन्तरिक्ष को विशुद्ध बनाते हुए प्राणिमात्र की भलाई करना है और वेदज्ञ महात्माओं के सम्पर्क एवं उपदेश से अपनी दिव्य शक्तियों को जगाकर अभीष्ट सुखों के अधिकारी बनकर उन्हें प्राप्त करना है। यजुर्वेद के प्रथम मंत्र में इषे त्वोर्जेत्वा कहकर यज्ञ को अन्न तथा रस का उत्पादक बताया है और ये दोनों जीवन के लिए अनिवार्य है। शतपथ ब्राह्मण ने यज्ञो वै श्रेष्ठमं कर्म कहकर यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म बतलाया है। यज्ञ द्वारा जिन-जिन पदार्थों की आहुतियां दी जाती हैं वे अग्नि द्वारा सूक्ष्म रूप को प्राप्त होकर अन्तरिक्ष मंडल में फैल जाती हैं और अन्तरिक्ष जलवायु का भली-भांति शोधन कर उन्हें सुगंधित एवं पुष्टिकारक बनाता है। इस जलवायु के योग से पृथ्वी की उर्वरा शक्ति बढ़ती है और रोगनाशक पुष्टिकारक औषधि वनस्पति, अन्न रस,फल-फूल आदि की पैदावार अधिक हो जाती है। पैदावार अधिक हो जाने से मनुष्य, पशु, कीट, पतंग आदि सभी प्राणियों का निर्वाह सरलता से हो जाता है। खिलाने-पिलाने की अपेक्षा यज्ञ के द्वारा अधिक उपकार होता है क्योंकि इस की अग्नि में आहुत हुए पदार्थों का दान अधिक से अधिक लोगों को प्राप्त होता है और त्याग भाव से दिया गया दान शत्रु मित्र निरपेक्ष होने से मानव मात्र के लिए कल्याण का कारण होता है। ऋषि मुनि स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म में अधिक शक्ति मानते हैं और स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म का प्रभाव अधिक व्यापक होता है। यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि यज्ञ की अग्नि में आहुत हुए पदार्थों का नाश हो जाता है बल्कि यह सोचना चाहिए कि किस प्रकार अग्नि पदार्थों को सूक्ष्म कर उसके प्रभाव को बढ़ाकर अधिक दूर तक पहुंचा देती है। इसी बात को समझाते हुए मनुस्मृति में कहा है-

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्य-मुपतिष्ठते।

आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।

अग्नि में डाली हुई आहुति आदित्य सूर्य को प्राप्त होती है और सूर्य से वर्षा होती है। वर्षा से अन्न और अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है। योगीराज श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है-

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्याद् अन्नसम्भवः।

यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञकर्मसमुद्भवः।।

प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं। अन्न की उत्पति वर्षा से होती है। वर्षा यज्ञ से होती है और यज्ञ कर्म से होता है। अग्नि से धूम उत्पन्न होता है, धूम से मेघ और मेघ से वृष्टि उत्पन्न होती है और इस प्रकार अग्नि में आहुत हुए पदार्थ नष्ट नहीं होते बल्कि अत्यन्त सूक्ष्म रूप होकर प्राणिमात्र के कल्याण का कारण होते हैं। मन्त्र में प्रभु उपदेश करते हैं- उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय। हे ब्रह्मणस्पते, उठो और सावधान होकर देवों को यज्ञों से जगाओ। मनुष्य को सम्बोधित करते हुए यहां ब्रह्मणस्पते कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य ब्रह्मणस्पति बन सकता है और प्रभु का आदेश है कि वह ब्रह्मणस्पति बने पर यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि वह अपने में ब्रह्मणस्पति बनने का भाव लेकर आए। मनुष्य स्वभाव से ही महत्वाकांक्षी है केवल उधर उसके ध्यान को आकृष्ट करने की आवश्यकता है।

मन्त्र मनुष्य को चेतावनी देता है कि ऐ मनुष्य तुझमें अनन्त शक्तियां छिपी हुई हैं, तू उनके विकास से अपने आपको उज्जवल और समुन्नत कर और अन्न, धन ज्ञान आदि का स्वामी बनकर एवं रक्षक बनकर सच्चा ब्रह्मणस्पति बन । उत्तिष्ठ उठ और सावधान होकर यज्ञ से अर्थात् परोपकार के उत्तमोत्तम कर्मों द्वारा अपनी सोई शक्तियों को जगा और उनकी सहायता से कर्त्तव्यपरायण होता हुआ अपनी आयु, प्राण, प्रजा, पशु, अन्न और धन की अभिवृद्धि कर साथ ही उत्तम कर्म करने वाले यजमान का भी संवर्धन कर।

इस प्रकार मन्त्र से हमें शिक्षा मिलती है कि हम यज्ञ द्वारा न केवल आयु ही बढ़ा सकते हैं बल्कि अपने प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन-दौलत इन सबको भी बढ़ा सकते हैं। यज्ञ करने वाले का सम्पर्क वेदज्ञ विद्वानों से होता है। जिनके उपदेश व आचरण उसके जीवन को कर्त्तव्यपरायण बनाते हैं। उसकी दिनचर्या नियमानुसार व्यवस्थित हो जाती है। उसके आहार-विहार, खान-पान, सोना-जागना आदि सब नियमित हो जाते हैं। इनका नियमित होना ही आयुवर्धक एवं प्राणसंस्थापक होता है जब मनुष्य स्वस्थ रहता है तो उसे अपने उत्तरोतर प्रयास से धन, दौलत, सन्तान पशु, कीर्ति आदि सभी वस्तुएं आसानी से प्राप्त हो जाती हैं। उत्तम कार्य की भावना वाला सदा ही उत्तम कर्म करने वाले दूसरे की सहायता करने को तत्पर रहता है क्योंकि बिना सहयोग एवं सहायता से उत्तमोत्तम कार्यों का विस्तार नहीं होता। यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है। इसमें विशेष रूप से सामूहिक उत्थान की भावना सन्निहित है इसलिए हमें प्रेरणा करता है कि समाज में जो अपने से अधिक ज्ञानवान हैं उनकी पूजा कर अपने आपको गौरवान्वित करो, जो बराबर के हैं उनका सहयोग प्राप्त करो और जो कमजोर हैं उनकी सब प्रकार से सहायता करो। जब मनुष्य बड़ों की पूजा, छोटों की सहायता और बराबर वालों का सहयोग करने लगता है तो उसकी दिव्य शक्तियां जाग जाती हैं और वह वास्तव में ब्रह्मणस्पति बन जाता है।

इसलिए महान बनने की इच्छा रखने वालों को परोपकार के श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ द्वारा अपनी दिव्य शक्तियों को जगा कर महान बनना चाहिए और प्रभु की सनातन वेदवाणी द्वारा दूसरों को महान बनने की प्रेरणा करनी चाहिए।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय। हे ब्रह्मणस्पते उठो, यज्ञ से दिव्य भावों को जगाओ।

सम्पादकीय.....

कन्या भ्रूण हत्या-कैसे मिटे यह अभिशाप

हम प्रतिदिन अखबारों में पढ़ते हैं कि कन्या भ्रूण करवाने वाला गिरोह पकड़ा गया, कभी हम टी.वी. पर ऐसे समाचार देखते हैं। ये खबरें पढ़ कर या सुनकर हमारे अन्दर विचारों की हलचल होने लगती है। एक बार तो हमारा दिल दहल उठता है लेकिन फिर हम अपनी दिनचर्या में जुट जाते हैं। आज हमारी जिंदगी इतनी अधिक व्यस्त हो गई है कि हम ऐसे गंभीर मुद्दों पर ध्यान ही नहीं दे पाते, जबकि वास्तव में इन समस्याओं का सीधा संबंध खुद हम से ही है। हम अपनी रोजी-रोटी और रोजमर्रा की समस्याओं में इस तरह उलझ गए हैं कि ऐसी सामाजिक समस्याओं को अपनी समस्या समझ ही नहीं पाते।

हम यह कैसे भूल सकते हैं कि समाज हमसे ही बनता है? हम समाज की ही ईकाई हैं। यदि समाज में कुछ भी बुरा होता है तो उसकी जिम्मेदारी हम सब की होती है। देखा जाए तो यह एक सामाजिक मसला है, न कि कानूनी। समाज नजरअंदाज करता है, इसलिए कानून को आगे आना पड़ता है। घर परिवार के अंदर होने वाले गुनाहों को कानून से कैसे खत्म किया जा सकता है? हम लाख कानून बना दें लेकिन यदि परिवार के लोग ऐसी कुरीतियों का विरोध नहीं करेंगे तो ऐसे अपराध लगातार होते रहेंगे और परिवारों के भीतर चुपके-चुपके ऐसी कुरीतियां पनपती ही रहेंगी।

जरा सोचें, क्या हम ऐसे समाज की कल्पना कर सकते हैं जहां केवल पुरूष ही पुरूष हों, स्त्रियां हो ही नहीं? लड़कियां नहीं होंगी तो बेटी और बहन का सुख नहीं होगा,तो पत्नी का सुख भी नहीं मिलेगा। परिवार कैसे बनेंगे? मां कहां से लाएंगे? वंश बढ़ाने के चक्कर में बेटे की कामना करते हैं लेकिन इस मामूली सी बात को नहीं समझ पाते कि बिना मां के पीढ़ी आगे कैसे बढ़ेगी? शायद समझते सभी हैं यह बात लेकिन बेटे की चाहत इतनी तीव्र होती है कि इस ओर से सभी आंखें मूंद लेना चाहते हैं।

कभी-कभी यह बात कचोटती है कि बेटियों को मारने की परम्परा ने जन्म कैसे लिया। हमारे समाज में तो प्राचीन काल से ही स्त्री को बड़ा ही सम्माननीय स्थान मिला था। हमारे ग्रन्थों में कहा गया कि **यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता:** कन्या को लक्ष्मी का रूप माना गया, तो फिर कालान्तर में यह स्थिति कैसे पैदा हो गई? क्या केवल वंश आगे बढ़ाने वाले बेटे की कामना ने ही इंसान को हैवान बना दिया? इतिहास पर नजर डालें, तो इसके पीछे कुछेक बड़े ही वीभत्स कारण नजर आते हैं लेकिन समय बदला तो हमें भी बदल जाना चाहिए था। ऐसा क्यों नहीं हो पाया? हम कन्या के प्रति असंवेदनशील या अतिसंवेदनशील कैसे बने रहे?

कितनी विचित्र बात है कि दादी, बुआ और मां के रूप में खुद महिलाएं इस काम में सहयोग देती हैं। खुद उन्होंने भी तो एक बेटी के रूप में ही इस दुनिया में जन्म लिया। यदि उनके माता-पिता ने भी उनसे छुटकारा पाने की कोशिश की होती तो? और मां! मां कैसे अपनी अजन्मी औलाद को खत्म करने की बात सोच सकती है? हालांकि यह भी सच है कि अधिकांश मामलों में मां की इच्छा को कोई महत्व ही नहीं दिया जाता, उनसे किसी तरह की सलाह नहीं ली जाती और न ही उनके निर्णय की कोई अहमियत होती है।

यह भी सच है कि बेटी की कामना करने वाली माताओं की संख्या बहुत कम होगी , भले ही कोख में आने के बाद वे उसे मारना न चाहें। ऐसी सोच तथा मानसिकता के पीछे क्या कारण हो सकता है? महिलाओं को तो हमारे यहां करूणा की मूर्ति माना गया है। अगर सिद्धान्तों को छोड़े और व्यवहारिक रूप में देखें तो भी महिलाओं में प्रेम, दया आदि की भावनाएं अधिक होने के कारण ही आज शिक्षण और नर्सिंग तथा अन्य क्षेत्रों में महिलाओं को प्राथमिकता दी जाती है। तो ऐसी करूणा की मूर्ति दूसरी करूणा की मूर्ति के जन्म में बाधक कैसे बन जाती है?

क्या इसका कारण यह है कि हमारे समाज में लड़के-लड़की के बीच का भेदभाव लड़कियों को इस कदर आहत करता है कि वे चाहती ही नहीं कि वही दर्द उनकी खुद की बेटी को भी सहन करना पड़े? बचपन में ही वे परिवार में भेदभाव का सामना करती हैं। उसके हमउम्र भाई को परिवार में अधिक अहमियत मिलना, छोटी-छोटी बातों में उसे प्राथमिकता मिलना शैशव काल से ही उसके कोमल मन को प्रभावित करने लगता है। वह यही समझने लगती है कि बेटा होना गर्व की बात है। घर से बाहर निकलने पर भी उनकी असुरक्षा उनको रह-रह कर आहत करती है और फिर हमारे समाज में शादी के नाम पर जिस तरह से सौदेबाजी होती है, उससे लड़कों के समान शिक्षा प्राप्त लड़की का आत्म सम्मान पूरी तरह से चूर-चूर हो जाता है। ऐसे में वो कैसे चाहेगी कि उसकी संतान भी इन्हीं परिस्थितियों से गुजरे? और बस वह बेटे की ही कामना करने लगती है।

ऐसे हालातों से निकलने के लिए खुद महिलाओं को ही आगे आना होगा क्योंकि केवल कानून बना देने से इसका कोई दूरगामी हल नहीं निकल सकेगा और लोग छुप-छुप कर ऐसे दुष्कृत्यों को अंजाम देते रहेंगे। महिलाओं को खुद ही अपने महिला होने का स्वाभिमान जगाना होगा। परिवार महिलाओं से ही चलता है, कोई माने न माने , वे ही परिवार की धुरी होती हैं। ऐसे में यदि वे छोटी-छोटी बातों पर ध्यान रखें कि बचपन से ही बेटे और बेटी की परवरिश में कोई अंतर न रखें, बेटे-बेटियों को समान संस्कार सिखाएं तो संभव है कि नई पीढ़ी के बच्चों में इस भेदभाव का अहसास ही न रहे। इस तरह से दोनों के बीच किसी तरह का भेदभाव ही नहीं उपजेगा और दोनों ही स्वावलंबी बन सकेंगे। बाहरी दुनिया का जो डर बेटियों के मन में पैदा किया जाता है, उस डर से बेटों को भी अवगत कराएं तो क्या अच्छा न होगा? इस तरह से हम धीरे-धीरे अपने बेटों के मन में लड़कियों के लिए सम्मान भी जगा सकते हैं।

बच्चों को ही जन्म देने से ही महिलाओं की जिम्मेदारी पूरी नहीं हो जाती। बल्कि यह कहना चाहिए कि तब तो हमारी जिम्मेदारी शुरू होती है। बेटे-बेटी दोनों को समान रूप से शिक्षा देना, उनकी परवरिश करना, सही पोषण और सही संस्कार देना हमारी ही जिम्मेदारी है। बेटी के आत्म सम्मान को चोटिल न होने देना भी हमारी ही जिम्मेदारी है और लड़कियों को सम्मान देने का महत्व बेटों को भी समझाना हमारी ही जिम्मेदारी है। यदि हम इस तरह की छोटी-छोटी बातों पर ध्यान दे सकें, थोड़ा सजग रह कर अपने बच्चों की परवरिश कर सकें, तो धीरे-धीरे ही सही पर हम कन्या भ्रूण हत्या ही नहीं, बल्कि लड़कियों के साथ होने वाले तमाम अत्याचारों से मुक्ति पा सकते हैं। जरूरत है तो बस सही दिशा में सही प्रयास करने की, थोड़ा सजग रहने की, थोड़ा जागरूक रहने की।

-प्रेम भारद्वाज सभा महामंत्री एवं सम्पादक

परीक्षा परिणाम

गांधी आर्य हाई स्कूल बरनाला का दसवीं कक्षा का परीक्षा परिणाम मार्च 2013 का 96% रहा। स्कूल के 118 विद्यार्थियों ने परीक्षा दी जिसमें से 113 विद्यार्थी पास हुए। स्कूल के 86 विद्यार्थियों ने 60% से अधिक प्रथम दर्जे में परीक्षा पास की तथा 17 विद्यार्थियों ने 75% से अधिक अंक प्राप्त किए। स्कूल की छात्रा ईलजिल ने 87.3% अंक लेकर प्रथम, जगसीर कौर 83.6% अंक लेकर द्वितीय, हिमांशु 83.5% अंक लेकर तृतीया, मोहित कुमार 83.4% अंक लेकर चौथा स्थान प्राप्त किया। स्कूल प्रबन्धक कमेटी प्रधान श्री प्रेम कुमार बांसल, सीनियर उप-प्रधान भारत भूषण मैनन, उप-प्रधान डॉ० सूर्य कान्त शोरी तथा अमृत लाल गुप्ता, मैनेजर संजीव शोरी, महासचिव भारत भूषण मोदी ने प्रिंसीपल राम कुमार सोबती तथा समूह स्टाफ को बधाई दी।

-रामकुमार सोबती

ऋग्वेद में ईश्वर-जीव सम्बन्ध

-ले० शिव नारायण उपाध्याय-73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी कोटा (राज:)

ऋग्वेद में ईश्वर एवं जीव के आपसी सम्बन्ध भी कई ऋचाओं में वर्णित है। परन्तु यह सब सम्बन्ध लाक्षणिक हैं चूंकि उसने सृष्टि में हमारे लिए उपभोग की सभी सामग्री प्रचुर मात्रा में बनाकर हमारा पालन पोषण किया है, इसलिए हम उसे पिता के रूप में स्मरण करते हैं। प्रलयावस्था में वह सम्पूर्ण संसार को ऊर्जा में बदल कर निगल जाता है और सृष्टि उत्पत्ति के समय हमें अमैथुनी विद्या से सृष्टि में पुन: कार्य करने को भेज देता है। उस समय वह माता की तरह वेदों का प्रारम्भिक ज्ञान देकर हमें जीवन जीने की कला सिखा देता है इसलिए हम उसे माता के रूप में भी स्वीकार करते हैं।

एक मित्र की तरह वह हमारे लिए ही तो सृष्टि की रचना करता है वह हमें सदैव क्रियाशील देखना चाहता है। कहीं-कहीं पर वह जीव का स्वामी जैसा भी दृष्टिगोचर होता है। वह हम जीवों को अपने अपने कर्मों के अनुसार उनका फल भी भुगवाता है, वह न्यायाधीश का कार्य भी उस समय करता है। अब हम ऋग्वेद की कई ऋचाएं पाठकों के सामने रखकर इन विभिन्न सम्बन्धों का दिग्दर्शन कराना चाहते हैं।

-पिता-पुत्र सम्बन्ध-

स न: पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनोभव।
सचस्वा न स्वस्तये। ऋ . 1.1.9.

पदार्थ:-(स:) वह परमात्मा (न:) हम लोगों के लिए (पितेव) पिता के समान (सूनवे) उत्तम ज्ञान का देने वाला होता है (अग्ने) हे अग्नि समान परमात्मा/आप (सूपायन:) हमारे लिए शोभन ज्ञान को जो कि सब सुखों का साधक होता है उसके देने वाले (भव) बनो। (न:) हम लोगों को (स्वस्तये) सब सुख के लिए (सचस्व) संयुक्त करो।

भावार्थ:-परमात्मा हम लोगों के लिए पिता के समान है, वह हमें उत्तम ज्ञान प्रदान करता है। वह हमें जो श्रेष्ठ ज्ञान देता है वह सुभी सुखों का साधक होता है, परमात्मा हम लोगों को सभी सुख प्राप्त करने की योग्यता दे।

पितुं नु स्तोषं महो धमाणं तविषीम्।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत्। ऋ . 1.187.1.
स्वादो पिता मधो पितो वयं त्वा ववृमहे।
अस्माकमविता भव। ऋ . 1.187.2
उप न: पितवा चर शिव: शिवाभिरूतिभि:।
मयोभुर द्विषेण्य: सखा सुशेवो अद्वया:। ऋ . 1.187.3.
तव त्ये पितो रसा रनास्यनु विष्ठिता:।
दिवि वाताइव श्रिता:। ऋ . 1.187.4.
तव त्ये पितो वदतस्तवं स्वादिष्ट ते पितो।
प्र स्वाद्मानो रसानां तुवि ग्रीवाइवेरते। ऋ . 1.187.5.
त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम्।
अकारि चारू केतुना तवाहिमवसा वधीत्। ऋ . 1.187.6.
यददों पितो अजगन्विवस्व पर्वतानाम्।
अत्रा चिन्नो मधो पितोऽरं भक्षाय गम्या:। ऋ . 1.187.7.

इन सभी ऋचाओं में परमात्मा को पिता के रूप में स्मरण किया गया है। 11वीं ऋचा में त्वा वयं पिता कहा गया है।

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्य: स्तोतारं ते शतक्रतो।
सकृत्सु नो मधवन्निन्द्र मृडयाधा पितेव नोभव। ऋ . 10.33.3.

भावार्थ:-संसार में व्यथाएं उस प्रकार मनुष्य को खाए डालती हैं जैसे चूहा रस के भीगे सूत्र को खाता है। परमेश्वर सबका पिता है अत: वही सुखी कर इन व्यथाओं को दूर कर सकता है।

अहम् पितेव वेतसूंरभिष्टये तुग्रं कुत्साय स्मदिभं च रन्धयम्।
अहं भुवं यजमानस्य राजनि प्र यभ्दरे तुजये न प्रिया धृषे। ऋ. 10.49.4

भावार्थ:-मैं पिता की तरह कल्याणार्थ उद्धत्त जल और मेघ को स्त्रोता के लिए विदारित करता हूँ। मैं यजमान को प्रकाश देता हूँ और जैसे पिता पुत्र के लिए करता है उसी प्रकार यजमान के लिए मैं बुराईयों का नाश करता हूँ। मैं यजमान को प्रिय वस्तुएं प्रदान करता हूँ।

ऋग्वेद 10.1.48 में भी ईश्वर को पिता के रूप में बताया गया है मा हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषेवि भजामि भोजनम्

प्राणी मात्र मुझे पिता के समान पुकारते हैं। मैं दानशील व्यक्ति को भोजन देता हूँ।

-पिता-सखा सम्बन्ध-

त्राता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम्।
सखा पिता पितृतम पितृणां कर्तेन लोकमुशते व्योधा:।
ऋ . 4.17.17.

पदार्थ:-हे विद्वान्। जो (न:) हम लोगों का वा हम लोगों की (त्राता) रक्षा करने (ददृशान्) उत्तम प्रकार देखने (आपि:) व्याप्त रहने (अभिख्याता) सम्मुख अन्तर्यामिपने से उपदेश देते (मर्डिता) सुख देने और (सखा) मित्र (पिता) संसार का उत्पन्न करने वाला (सोम्यानाम्) चन्द्रमा के तुल्य शान्ति आदि गुणों से युक्त (पितृणाम्) उत्पन्न का पालन करने वाला (पितृतम:) अत्यन्त पालन करने वाला (कर्ता) कर्त्ता पुरूष (लोकम्) लोक की (उशते) कामना करते हुये के लिए (ईम) सब को (उ) ही (वयोधा:) जीवन वा सुन्दर वस्तु का धारण करने वाला जगदीश्वर है ऐसा उसको (बोधि) जानो।

भावार्थ:-हे मनुष्यों। जो जगदीश्वर मित्र के तुल्य सबका सुख कर्ता, सत्य का उपदेश करने वाला, उत्पन्न करने वालों का उत्पन्न कर्ता, पालन करने वालों का पालन कर्ता, सब कर्मों का देखने वाला, न्यायाधीश, अन्तर्यामी, अभिव्याप्त है, उसी को जान कर उपासना करो।

-माता-पुत्र सम्बन्ध-

य इमे रोदसीमही सं मातरेव दोहते।
मदेषु सर्वधा असि। ऋ . 9.18.5.

पदार्थ:-(य:) जो परमेश्वर (मातरा इव) जीवों की माता के समान (इमेमही रोदसी) इस आकाश और पृथ्वी लोक से (सं दोहते) दूध के समान नाना प्रकार के रत्नादिकों को दुहता है (मदेषु) वही परमात्मा हर्ष युक्त वस्तुओं के (सर्वधा) सब प्रकार की शोभा को धारण करने वाला (अस्ति) है।

भावार्थ:-माता शब्द यहाँ उपलक्षण मात्र है। वास्तव में भाव यह है कि जीवों की माता के समान जो पृथ्वी लोक और द्यु लोक हैं-इनसे नाना विध भोग पैदा करने वाला एक मात्र परमात्मा ही है कोई अन्य नहीं।

-पिता-मित्र-आचार्य-

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये। सखा सख्ये वरेण्य। ऋ . 1.26.3.

पदार्थ:-हे मनुष्यो। जैसे (पिता) पालन करने वाला (सूनवे) पुत्र के (सखा) मित्र (सख्ये) मित्र के और (आपि:) सुख देने वाला विद्वान् (आपये) उत्तम गुण व्याप्त होने विद्यार्थियों के लिए (आ यजति) अच्छे प्रकार यत्न करता है वैसे परस्पर प्रीति के साथ कार्यों को सिद्ध कर (हि) निश्चय करके (स्म) वर्तमान में उपकार के लिए तुम संगत हो।

भावार्थ:-इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे अपने पुत्रों को सुख संपादन, उन पर कृपा करने वाला पिता, स्वमित्रों को सुख देने वाला मित्र और विद्यार्थियों को विद्या देने वाला विद्वान् अनुकूल वर्तता है वैसे ही सब मनुष्य सबके उपकार के लिए निरन्तर यत्न करें ऐसा ईश्वर का उपदेश है।

-माता-पिता और विधाता-

यो: न पिता जनिता यो विधाता धामानि वेदभुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या।
ऋ . 10.82.3.

पदार्थ:-(य:) जो परमेश्वर (न:) हमारा (पिता) पालक तथा (जनिता) उत्पन्न करने वाला (य:) जो (विधाता) सब जगत् का रचयिता है जो (विश्वा) समस्त (धामानि) स्थानों (भुवनानि) लोकों को (वेद) जानता है (य:) जो (देवानाम्) समस्त पदार्थों का (नामधा) नाम रखने वाला और (एक एव) अद्वितीय है (तम्) उस ही (संप्रश्नम्) सभी प्रश्नों के प्रश्न को (अन्या) दूसरे (भुवना) भुवन आदि (यन्ति) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ:-जो परमेश्वर हमारा पालक, हमारा उत्पन्न करने वाला और जो समस्त जगत् का निर्माता है और समस्त स्थानों, लोकों तथा पदार्थों को जानता है और जो समस्त पदार्थों का नाम रखने वाला है, वही अद्वितीय है। समस्त समस्याओं का वही एक मात्र समाधान है।

-मित्र एवं स्वामी सम्बन्ध-

सो चिन्नु सख्या नर्य इन: स्तुतश्चर्कृत्य इन्द्रोमावते नरे।
विश्वासु धूर्षु वाज कृत्येषु सत्पते वृत्रे वाप्स्वभि शूर मन्दसे।
ऋ . 10.50.2.

पदार्थ:-(सो चित् नु) वह ही (इन्द्र:) परमेश्वर (नर्य:) समस्त मनुष्यों का हितैषी (इन:) स्वामी और (सख्याय) सख्य भाव से (मावते) मुझ जैसे (नरे) मनुष्य के लिए (स्तुत:) स्तुत्य होकर (अर्कृत्य:) सेवा करने योग्य है।

(सत्पते) हे समस्त पदार्थों और सत् पुरूषों के पालक (शूर) बलशाली तू (वाजकृत्येषु) ज्ञान और बल से किये जाने वाले कार्यों में (विश्वासु) समस्त (धूर्षु) धारण करने योग्य पदों में (अप्सु) जलों में (वा) और (वृत्रे) मेघ में (अभिपमावते) आनन्दित हो रहे हो।

भावार्थ:-वह ही परमैश्वर्यशाली भगवान् सबका हितैषी, स्वामी और मुझ जैसे व्यक्ति के लिए सख्य भाव से स्तुत्य होकर सेवा करने योग्य है। वह समस्त पदार्थों का पालक और बलशाली ज्ञान और कर्म से किये जाने वाले कार्यों समस्त धारण करने योग्य पदार्थों, जलों और मेघ में आनन्द ले रहा है।

-धारक और स्वामी-

आधीपमाणाया: पति: शुचायाश्च शुचसय च।
वासो वायोऽवी नामा वासांसि मर्मृजत्। ऋ . 10.26.6.

(शेष पृष्ठ 6 पर)

आयु के साथ-साथ ज्ञान भी बढ़ता है तप से

-ले० डा. अशोक आर्य १०४-शिप्रा अपार्टमेन्टस कौशाम्बी २०१०१० गाजियाबाद उ.प्र.

यह एक ध्रुव सत्य है कि इस संसार का प्रत्येक व्यक्ति लम्बी आयु प्राप्त करने का अभिलाषी है। इस अभिलाषा के अनुरूप लम्बी आयु तो चाहता है किन्तु इस लम्बी आयु को पाने के लिए उसे कठिन पुरुषार्थ करना होता है। वास्तव में मानव बड़ी बड़ी अभिलाषाएं तो रखता है किन्तु तदनुरूप पुरुषार्थ नहीं करता। फिर इन विशाल अभिलाषाओं का क्या प्रयोजन ? कैसे पूर्ण हों ये अभिलाषाएं ? आज का मानव सब प्रकार से निरोग व हृष्ट पुष्ट रहते हुए ज्ञान का स्वामी बनने के लिए इच्छाओं का सागर तो ढोता है किन्तु इस सागर में से एक बूंद भी पाने के लिए, उस का उपभोग करने के लिए पुरुषार्थ नहीं करता, जब कि सब प्रकार की उपलब्धियां पुरुषार्थ से ही पायी जा सकती हैं। पुरुषार्थ ही इस जीवन का आधार है। इसलिए वेदादि महान् ग्रन्थ पुरुषार्थी बनने की प्रेरणा देते हैं। ज्ञान व आयु बढ़ाने के लिए तपोमय जीवन बनाने की प्रेरणा अथर्ववेद के मन्त्र ७.६१.२ में इस प्रकार दी गयी है।

अग्ने तपस्तप्यामहे, उप तप्यामहे तापः।
श्रुतानी श्रन्वंतो वयं, आयुष्मंतः सुमेधसः॥
अथर्व. ७.६१.२॥

यदि इस मन्त्र का संक्षेप में भाव जानने का प्रयास करते हैं तो हम पाते हैं कि मन्त्र हमें उपदेश दे रहा है कि हे मनुष्य तू मानसिक व शारीरिक तप कर। इस प्रकार तप द्वारा वेदादि का ज्ञान प्राप्त करते हुए मेधावी व दीर्घ आयु को प्राप्त कर।

भाव से स्पष्ट है कि यह मन्त्र दो प्रकार के तपों का उल्लेख कर रहा है। इन दो प्रकार के तपों का नामकरण इस प्रकार कर सकते हैं-

१. तप २. उपतप

मन्त्र कहता है कि इन दो प्रकार के तपों के निरंतर अभ्यास से बुद्धि शुद्ध होती है, निर्मल होती है, तेजस्वी होती है तथा इस प्रकार के तप से मानव ज्ञान का स्वामी बन जाता है व दीर्घायु को प्राप्त होता है।

यह जो दो प्रकार के तपों का वर्णन इस मन्त्र में आया है इन में से तप को हम मानस तप तथा उपतप को शारीरिक तप का नाम दे सकते हैं। मानस तप उस तप को कहते हैं, जिस के द्वारा शरीर व मन शुद्ध होता है। इसके लिए शरीर को विशेष कष्ट नहीं करना होता। इसे पाने के लिए अधिक परिश्रम अधिक पुरुषार्थ करने की आवश्यकता नहीं होती। दूसरे प्रकार के तप का नाम उपतप के रूप में जो दिया है इस प्रकार के तप को पाने के लिए आसन व प्राणायाम करना होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि आसन व प्राणायाम को उपतप के नाम से जाना गया है। आसन व प्राणायाम के लिए मनुष्य को प्रयास करना होता है, मेहनत करनी होती है, पुरुषार्थ करना होता है। इस प्रकार शरीर को कुछ कष्ट दे कर इस की शुद्धिकरण का प्रयास आसन व प्राणायाम द्वारा किया जाता है तो इसे उपतप के नाम से जाना गया है। गीता में उपदेश देते हुए श्लोक संख्या १७ १४ तथा श्लोक संख्या १७.१६ के माध्यम से योगी राज श्री कृष्ण जी इस प्रकार उपदेश करते हैं :-

देव्द्विजगुरुप्राग्यपूजनं शौच-मार्जवम।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥ गीता १७.१४॥

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत तपो मानसमुच्यते॥ गीता १७.१६॥

श्रीमद्भागवद्गीता के उपर्वर्णित श्लोकों के अनुसार मानस तप का अति सुन्दर वर्णन किया है। श्लोक हमें उपदेश कर रहा है कि मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मनोनिग्रह, भावशुद्धि तथा जितेन्द्रियता आदि को मानस तप जानों। ब्रह्मचर्य, अहिंसा, शरीर की शुद्धि, सरलता आदि शारीरिक तप हैं। इस प्रकार गीता भी वेदोपदेश का ही अनुसरण कर रही है। इतना ही नहीं योगदर्शन भी इसी चर्चा को ही आगे बढ़ा रहा है। योग दर्शन के अनुसार :-

अहिंसासत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यमपरिग्रहायमा :
॥ योग. २.३०॥

शौचासंतोष-तप-स्वा-ध्याये-श्वरप्रणिधानानी नियमाः
॥ योग. २.३२.॥

इस प्रकार योग दर्शन ने यम को मुख्य तप तथा नियम को गौण या उपतप बताया है। इसके अनुसार यम पांच प्रकार के होते हैं-

(१.) अहिंसा
(२.) सत्य
(३.) अस्तेय (चोरी न करना)
(४.) ब्रह्मचर्य का पालन
(५.) विषयों से विकृति अर्थात् अपरिग्रह

योग-दर्शन कहता है कि सुखों के अभिलाषी को इन पांच यम पर चलना आवश्यक है। इस के बिना वह सुखी नहीं रह सकता। इसके साथ ही योग-दर्शन नियम पालन को भी इस मार्ग का आवश्यक अंग मानता है। इस के अनुभव नियम भी पांच ही होते हैं-

(१) स्वच्छता, जिसे शौच कहा है
(२) संतोष
(३) तप
(४) ईश्वर चिंतन जिसे ईश्वर प्रणिधान का नाम दिया गया है

योग दर्शन ने जहाँ पांच तप माने हैं, वहां तप को नियम का भी भाग माना है तथा पांच नियमों में एक स्थान तप को भी दिया गया है। इससे ही स्पष्ट है कि तप अर्थात् पुरुषार्थ का महत्व इस में सर्वाधिक है। फिर पुरुषार्थ के बिना तो कोई भी यम अथवा नियम का पालन नहीं किया जा सकता।

अंत में हम कह सकते हैं कि अग्निरूप परमात्मा के आदेश से जब हम मानसिक व शारीरिक तप करते हैं तथा वेदादि सत्य ग्रंथों का स्वाध्याय कर ज्ञान प्राप्त करते हैं तो हमें अतीव प्रसन्नता मिलती है, अतीव आनंद मिलता है। आनंदित व्यक्ति की सब मनो-कामनाएं पूर्ण होती हैं। जिसकी मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं, उसकी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता। प्रसन्न व्यक्ति को कभी ह्रास नहीं होता, उसकी आयु दीर्घ होती है। अतः वेदादेश को मानते हुए वेद मन्त्र में बताये उपाय करने चाहियें, जिससे हम सुदीर्घ आयु पा सकें।

आर्य समाज अड्डा होशियारपुर का वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न

आर्य समाज मंदिर अड्डा होशियारपुर जालन्धर शहर का वार्षिक अधिवेशन दिनांक 2.6.2013 को सम्पन्न हुआ। ईश स्तुति प्रार्थना मंत्रों से कार्यवाही आरम्भ हुई। गत वर्ष बिछुडी हुई आत्माओं की शांति के लिये दो मिनट का मौन धारण किया गया। गत साधारण सभा की कार्यवाही के उपरान्त आर्य समाज का आय व्यय का ब्यौरा पढ़ कर सुनाया गया जो सर्वसम्मति से पारित हुआ। आगामी वर्ष के लिये 71 सभासदों की स्वीकृति हुई। इसके बाद चुनाव की प्रक्रिया आरम्भ की गई। जिसमें निम्न पदाधिकारी सर्वसम्मति से मनोनीत किये गये। प्रधान श्री ओम प्रकाश अरोड़ा, वरिष्ठ उप प्रधान श्री विनोद कुमार सेठ, श्री रामकृष्ण अरोड़ा, श्री राजेश वर्मा, महामंत्री श्री रमेश कालड़ा, प्रचार मंत्री श्री श्रवण भारद्वाज, उप मंत्री श्री सुनील दत्ता, कोषाध्यक्ष श्री सोहन लाल सेठ, पुस्तकाध्यक्ष श्री राजेश कुमार, लेखानिरीक्षक श्री जसवन्त राज। प्रतिष्ठित सदस्य श्री अरुण पुरी जी, श्री सुभाष सहगल, श्री मनमोहन ऐरी, श्री नवल किशोर, श्री जगदीश चन्द्र, श्री अश्विनी शूर, श्री इन्द्रजीत हस्तीर, श्री अशोक कुमार, पंकज अग्रवाल, श्रीमती किरण रानी।

आर्य समाज सिविल लाईन लुधियाना में गायत्री महायज्ञ सम्पन्न

गत दिनों आर्य समाज सिविल लुधियाना में 5-5-2013 रविवार को टैगोर नगर पार्क में आर्य समाज में प्रधान कविराज वैद्य वैणी प्रसाद शास्त्री जी की अध्यक्षता में गायत्री यज्ञ एवं वेद प्रचार सम्मेलन सम्पन्न हुआ। रविवार प्रातः यज्ञ की अग्नि श्री अनिल सिंघानिया, श्री वेद प्रकाश भण्डारी, श्री वेद प्रकाश आर्य, श्री रत्न चन्द आर्य ने सम्मिलित रूप से प्रज्वलित की। पंडित सुरेन्द्र कुमार शास्त्री वेद प्रवक्ता ने बहुत ही सुन्दर ढंग से यज्ञ को सम्पन्न करवाया। शास्त्री जी ने अपने सम्बोधन में मनुष्य जीवन में यज्ञ के महत्त्व को बताया। बिना यज्ञ के जीवन अधूरा है। बहुत ही सुन्दर ढंग से गायत्री मंत्र के एक-एक शब्द का अर्थ समझाया, यज्ञ के पश्चात् कुमारी नम्रता सोनी व सरोज वर्मा के मधुर भजनों ने श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध कर दिया। श्री श्रवण कुमार जी बत्रा आर्य ने यज्ञ करवाने में शास्त्री जी का भरपूर साथ दिया। यज्ञ में टैगोर नगर ए वैलफेयर सोसायटी के सभी सदस्यों ने पूरा सहयोग दिया। यज्ञ में फलों का प्रसाद एडवोकेट गौतम जी भल्ला की ओर से था तथा विशाल लंगर श्री प्रीतम सिंह जी कोछड़ की ओर से था, यज्ञ एवं वेद प्रचार घर-घर पहुंचे इस उद्देश्य से आर्य समाज सिविल लाईन की ओर से चार वेद मन्त्रों की सुन्दर व्याख्या सहित नैमीनेशन किया मोमेन्टों सब को भेंट किया गया, इस यज्ञ में गणमान्य महानुभाव पधारे। श्री मंगत राय, श्री रोशन लाल आर्य, श्री सतपाल नारंग, श्री जगदीश नारंग, श्री रणवीर पाहवा, श्री सुभाष पाहवा, डॉ० विष्णु शर्मा, श्री विजय जी सरीन महामन्त्री ज़िला आर्य सभा, श्री चन्द्र जी गम्भीर, श्री हर्ष सूद, श्री वीरेन्द्र शर्मा, श्रीमती शुभ भण्डारी, श्रीमती उपमा पाहवा, श्री अशोक वैद्य, श्री महेन्द्र बस्सी आदि बहुत से आर्य परिवार सहित पधारे, आर्य समाज के प्रधान श्री वैणी प्रसाद शास्त्री ने समारोह में पधारे सभी भाई-बहनों का धन्यवाद किया और कहा कि आप सबके सहयोग से आर्य समाज सिविल लाईन वर्ष में कम से कम 4 बड़े यज्ञों का आयोजन करता रहेगा ताकि आर्य समाज एवं युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द का संदेश जन-जन तक पहुंचे।

-मन्त्री आर्य समाज

पृष्ठ 1 का शेष- अतः आत्मा ही.....

मन के स्वरूप की दृष्टि से जब हम विचार करते हैं, तो स्पष्ट होता है, कि शरीर ज्ञान तथा कर्म इन्द्रियों का समुच्चय है। बाहर के व्यवहारों को जैसे इन इन्द्रियों के सहयोग से ही साधा जाता है। ऐसे ही अन्दर भी सोचने आदि के व्यवहार होते हैं, इन आन्तरिक व्यवहारों को करने वाले अन्तः करण कहलाते हैं। जैसे कि किसी विषय के पक्ष-विपक्ष पर सोचना मन का काम है। किसी समस्या या बात का निर्णय बुद्धि लेती है। सारी याद की हुई बातें चित्त में रहती हैं, अर्थात् चित्त ही पुरानी यादों को याद करता है और मैं और मेरेपन की भावना, अपनत्व को जताने वाला अहंकार कहलाता है। अनेक बार सारा अन्तः करण केवल मन के नाम से या इन चारों में से किसी एक नाम से भी पुकार लिया जाता है। जैसे कि योग दर्शन में अधिकतर चित्त का ही चित्रण है और न्याय-वैशेषिक में प्रमेयों, द्रव्यों की गिनती केवल मन से ही पूर्ण की गई है। न्याय में बुद्धि को ज्ञान का दूसरा नाम (पयार्य) कहा गया है।

हम जागते समय देखते हैं, कि हमारी आंख आदि इन्द्रियां अपेक्षा के अनुसार अपना-अपना कार्य करती हैं। पर जब हम सोए हुए होते हैं, तब आंख आदि सारी इन्द्रियां भी सो जाती हैं। अतः इन के द्वारा वह-वह कार्य नहीं होता। सोते-सोते कई बार हमें स्वप्न आते हैं और उन में ऐसा लगता है, कि जैसे कि वहां देखने-सुनने या खाने का कार्य हो रहा हो। इन कार्यों को करने वाली वह-वह इन्द्रिय तो निश्चित रूप से सोई हुई होती है। अतः प्रश्न होता है, कि यह इन्द्रियों जैसा अनुभव कैसे होता है। विचारकों का विचार है, कि ये सारे स्वप्न मन के कारण होते हैं, वह ही पूर्व स्मृति के आधार पर ऐसे अनुभव अपनी कल्पना से करता है। ये सुपने प्रायः सभी को आते हैं। अतः इन को कल्पित करने वाला कोई न कोई तो अवश्य ही है। इन्द्रियां उस समय सोई हुई होती हैं। इसलिए उन से भिन्न मन ही यह कार्य करता है। इस सारी चर्चा से सिद्ध होता है, कि हमारे शरीरों में हमारे अपनेपन में मन का अस्तित्व अनिवार्य है।

अभी कुछ समय पूर्व भिन्न-भिन्न की दृष्टि से आत्मा के स्वरूप को बताने वाला जो उद्धरण दिया था। उस में बौद्धों के विचार को भी रखा गया है। बौद्धधर्म के दार्शनिक दृष्टि से चार भेद हैं-वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक। वैभाषिक बाह्य पदार्थों को स्वीकार करते हैं और सौत्रान्तिक इन बाह्य पदार्थों को केवल बुद्धि द्वारा किए जाने वाले अनुमान के रूप में ही मानते हैं। योगाचार विज्ञान को ही सब कुछ मानता है, उस के अनुसार विज्ञान ही आत्मा है, जो शरीर से पृथक तथा ज्ञान रूप है, पर वह क्षण-क्षण के बाद बदलता रहता है और तब उस का संस्कार नदी के प्रवाह की तरह आगे से आगे चलता रहता है अर्थात् पहले क्षण का ज्ञान अपने बाद आने वाले क्षण को संस्कार देकर नष्ट हो जाता है। माध्यमिक शून्यवाद को स्वीकार करता है, इस की दृष्टि में ब्राह्य पदार्थों या उन के ज्ञान की भी सत्ता नहीं अर्थात् सब कुछ शून्य रूप में ही है। हां, कुछ विचारक यहां शून्य को एक पारिभाषिक शब्द मानते हैं, उन के विचार से शून्य का अर्थ अभाव, निषेध नहीं है।

न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसा-वेदान्त ये सारे के सारे दर्शन शरीर, इन्द्रिय और अन्तः करण से अतिरिक्त आत्मा को स्वीकार करते हैं। जो कि शरीर, इन्द्रिय और अन्तः करण के द्वारा होने वाले कार्य का जो कराने वाला और अनुभवकर्ता है, वही आत्मा है। परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार यथासमय अपने कर्मों के फलों का भोक्ता भी यही आत्मा ही है। हां, सांख्य दर्शन के कुछ विचारक ऐसे भी हैं, जो चर्चित कर्मों का कर्ता तो प्रकृति (अर्थात् प्रकृतिजन्य इन्द्रियों आदि) को ही मानते हैं, पर उन कर्मों के फल का भोक्ता ही आत्मा को समझते हैं।

हां, इस सारी चर्चा को सरलता से हृदयंगम करने का एक बहुत सुन्दर उदाहरण यह हो सकता है। जैसे कि हम अपने व्यवहार में बिजली से काम करने वाले बल्ब, टयूब, पंखे, हीटर, आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि अनेक यन्त्रों को बर्तते हैं या कार्य करते हुए देखते हैं। इन सब में तीन का योगदान स्पष्ट ही होता है। प्रथम-बल्ब, टयूब, पंखा या हीटर आदि यन्त्र, दूसरा बटन (अर्थात् बिजली तथा यन्त्र का सम्बन्ध) और तीसरी-बिजली इन तीनों के सक्रिय सहयोग से ही वह-वह यन्त्र अपना-अपना कार्य करता है। तीनों में से किसी एक के भी विकृत, अनुपस्थित होने पर परिणाम सामने नहीं आता। अतः विद्युत प्रकाश के लिए उस समय बिजली की जहां उपस्थिति चाहिए, वहां बटन और बल्ब, टयूब का सक्रिय होना भी आवश्यकता है। इस उदाहरण के अनुरूप प्रस्तुत प्रसंग में बिजली चेतना देने वाली आत्मा है, बटन का कार्य मन करता है, तो बल्ब, पंखा, हीटर आदि की तरह इन्द्रियां उस-उस कार्य को करती हैं।

दर्शनों में जीवन व्यवहार को सामने रखकर इन्द्रियों और मन के कार्यों का जहां विवेचन किया है, वहां इन से कार्य लेने वाले आत्मा का भी विश्लेषण किया है। इन्द्रिय शब्द पर विचार करते हुए पाणिनिमुनि ने माना है, कि इन्द्र (=आत्मा) के जो साधन हैं, पहचान में जो सहायक हैं, वे आंख, कान आदि ही इन्द्रिय कहलाते हैं। अर्थात् इन्द्र शब्द का अर्थ आत्मा मानने पर ही उस से इन्द्रिय शब्द चरितार्थ होता है। ऐसे ही अन्तः करण का अर्थ है, अन्दर से सहायता करने वाला। अर्थात् कर्ता रूपी आत्मा को ये सहायता देते हैं।

आज जिस रूप में मेरी और आप की स्थिति है। इसी को ही अपना आपा कहा जाता है। इसी के लिए ही हम मैं-मैं का प्रयोग करते हैं वह स्थिति शरीर-इन्द्रिय-अन्तः करण और आत्मा के मेल से ही सामने आती है इसी मेल के माध्यम से हमारे भौतिक, आध्यात्मिक सदृश सारे व्यवहार होते हैं। तभी तो अनेक शास्त्रों में इन के मेल को ही कर्ता, भोक्ता प्रतिपादित किया है[1]। अतः आज की स्थिति में 'मैं क्या हूँ' या मेरा अपना आपा क्या है ? का पूर्ण उत्तर शरीर-इन्द्रिय-मन-आत्मा का मेल रूप ही है। बृहदारण्यक के पूर्ण आए आख्यान से यही परिपुष्ट होता है। दर्शनों की तरह उपनिषदों में भी (किं ज्योतिरात्मा....आत्मैवास्य ज्योतिर्भवति वृह 4,3,6; कतम आत्मा वृह. 4.3,7) आत्मा के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

हां, उस उद्धरण के अन्तिम भाग में यह भी दर्शाया गया है, कि अनेक आत्मा शब्द से केवल ब्रह्म का ही ग्रहण करते हैं। उन के विचार से ब्रह्म ही केवल एकमात्र चेतनतत्त्व है। जीव और प्रकृति उस के खिलौने मात्र हैं। परमेश्वर ही एक ऐसा परमतत्त्व है, जो सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान, नित्य है। जिस की इन गुणों की दृष्टि से कोई तुलना नहीं। हां, उपनिषदों में अनेक ऐसे स्थल हैं, जहां यह स्पष्ट नहीं होता, कि आत्मा शब्द से यहां किसका विशेष रूप से ग्रहण है। वैसे परमात्मा, जीवात्मा इन दोनों के साथ आत्मा शब्द जुड़ा हुआ है। अतः सन्देह उत्पन्न होना सरल है, पर अपना आपा तो अनुभव से ही स्पष्ट किया जा सकता है। इसी के लिए ही यह सारी चर्चा चलाई गई है। अतः इस अमृत-आत्मा को अनुभव करने के लिए पूर्वनिर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार श्रवण मनन-ध्यान को अपनाना चाहिए। हां, अब इसी आशा के साथ इस अमृत की चर्चा का समापन करते हैं।

1. आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिण : कठ 1,3,4
शरीरेन्द्रियसच्चात्मसंयोग धारि जीवितम्, चरक सूत्र-1,42

आर्ष गुरुकुल किंग्स वे कैम्प दिल्ली में प्रवेश प्रारम्भ

वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में अपने जीवन को समर्पित करने वाले निष्ठावान युवकों हेतु आर्ष गुरुकुल किंग्स वे कैम्प दिल्ली में प्रवेश प्रारम्भ है। अष्टाध्यायी क्रम से प्रथमावृत्ति, काशिका, महाभाष्य, व दर्शनों, उपनिषदों आदि का अध्यापन कराया जायेगा। गुरुकुल में भोजन, आवास की निःशुल्क व्यवस्था रहेगी। प्रवेश के इच्छुक विद्यार्थी अपना हस्तलिखित आवेदन पत्र आर्ष गुरुकल के पते पर भेजें, जिसमें दूरभाषा, नाम, स्थान आदि विवरण हो।

सम्पर्क करें-ऋषि देव आर्य दूरभाष 98187-04609

पृष्ठ 4 का शेष- ऋग्वेद में.....

पदार्थः-(आधीपमाणायाः) सब प्रकार के घृत (शुचायाः) सत्व गुण वाली प्रकृति (च) और (शुचस्य) ज्ञान गुण वाले जीव का वह पालक परमेश्वर (पतिः) स्वामी है। (अवीनाम्) भेड़ों की ऊन से जैसे (वासोवायः) ऊनी वस्त्रों को बनाने वाला वस्त्रों को बनाकर (वासांसि) वस्त्रों को (मर्मृजत्) साफ स्वच्छ रखता है वैसे ही वह प्रभु प्रकृति परमाणुओं से अपने द्वारा बनाये गये शरीर रूपी वस्त्रों को स्वच्छ रखता है।

भावार्थः-वह परमेश्वर जीव और प्रकृति का धारक तथा स्वामी है। जिस प्रकार ऊनी वस्त्र बनाने वाला भेड़ के ऊन से स्वच्छ वस्त्र बनाता है वैसे ही वह प्रभु भी प्रकृति परमाणुओं से जीव के शरीर रूपी वस्त्र को स्वच्छ बनाता है।

-मित्रता का सम्बन्ध-

विष्णोः कर्माणि पश्यत् यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा। **ऋ. 1.22.19.**

पदार्थः-हे मनुष्य लोगों। तुम जो (इन्द्रस्य) जीव का (युज्यः) अर्थात् जो अपनी व्याप्ति से संयोग करने वाले दिशा, काल और आकाश है, उनमें व्यापक होकर रमने का (सखा) सब सुखों का सम्पादन करने से मित्र है (यतः) जिससे जीव (व्रतानि) सत्य बोलने और न्याय करने आदि उत्तम कर्मों को (पस्पशे) प्राप्त होता है उस (विष्णोः) सर्वव्यापक, शुद्ध स्वभावसिद्ध अनन्त सामर्थ्य वाले परमेश्वर के (कर्माणि) जो कि जगत् की रचना, पालना, न्याय और प्रयत्न करना आदि कर्म हैं उनको तुम लोग (पश्यत) अच्छी प्रकार जानो।

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानाम भवः शिवः सखा।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरूतो भ्राज दृष्टयः।
ऋ. 1.31.1.

पदार्थः-हे (अग्ने) प्रकाश एवं विज्ञान स्वरूप परमेश्वर। जिस कारण (त्वम्) आप (प्रथमः) अनादि स्वरूप अर्थात् जगत् कल्प की आदि में सदा वर्तमान (अङ्गिर) ब्रह्माण्ड के पृथ्वी आदि, शरीर के हस्त, पाद आदि अङ्गों के रस रूप अर्थात् अन्तर्यामी (ऋषि) सर्वविद्या से परिपूर्ण वेद के उपदेश करने और (देवानाम्) विद्वानों के (देव) आनन्द उत्पन्न करने (शिवः) मंगलमय तथा प्राणियों को मंगल देने तथा (सखाः) उनके दुःख दूर करने में सहकारी मित्र (अभवः) होते हैं और जो (विद्मनापसः) ज्ञान के हेतु काम युक्त (मरूतः) धर्म को प्राप्त मनुष्य (तव) आपकी (व्रते) आज्ञा नियम में रहते हैं इससे वही (भ्राज दृष्टयः) प्रकाशित अर्थात् ज्ञान वाले (कवयः) कवि विद्वान् (अजायन्त) होते हैं।

ऋग्वेद मण्डल। सूक्त 164 ऋचा 20 में ईश्वर, जीव तथा प्रकृति को अनादि, नित्य बताने के साथ ईश्वर एवं जीव को मित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभि चाक शीति॥

आगे ऋ. 8.74.1. बताया गया है कि हमें ईश्वर को अपना मित्र मान कर उससे प्रेम करते हुए उसकी आज्ञा का पालन करना चाहिए-

यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम्।

पदार्थ-(हविष्मन्तः) घृत आदि साधन सम्पन्न (जनासः) मनुष्य (प्रशस्तिभिः) उत्तमोत्तम विभिन्न स्त्रोतों से (सर्पिरासुतिम्) घृतादि पदार्थों को उत्पन्न करने वाले (यम्) जिस जगदीश को (मित्रम् न) मित्र के समान (प्रशसन्ति) प्रशंसा, स्तुति और प्रार्थना करते हैं।

फिर ऋग्वेद 8.76.1 में मित्र के लिए मरूत शब्द का प्रयोग हुआ है। अगली दो अन्य ऋचाओं में भी मित्र शब्द के लिए 'मरूत' का ही प्रयोग हुआ है।

ऋ. 9.31.6 में मित्र के लिए 'सखित्व' शब्द काम में लिया गया है।

स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयम्।
इंदो सखित्वमुश्मसि।

पदार्थः-(भुवनस्यपते) हे सम्पूर्ण भुवनों के पति परमात्मा। (ते) तुम्हारी (स्वायुधस्य सतः) जीवित जाग्रत शक्ति से (इन्दो) हे परम ऐश्वर्य स्वरूप। हम लोग तुम्हारे (सखित्वम्) मैत्री भाव को (उश्मसि) चाहते हैं।

भावार्थः-सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों के नियन्ता और विभिन्न ज्ञानों के अवयन्ता परमात्मा से जो लोग मैत्री चाहते हैं वे लोग इस संसार में परमात्मा का पान करते हैं।

ऋ. 10.25.9. में परमात्मा को शिवः सखा अर्थात् जीवात्मा का कल्याणकारी मित्र कह कर संबोधित किया गया है।

अहमिन्द्रो न पराजिग्य इद्वनं न मृत्यवै तस्ये कदाचन।
सोममिन्मा सुन्वतो याचता वसुन में पूरवः सख्ये रिषाथन॥
ऋ. 10.48.5.

भावार्थः-मैं सर्वशक्तिमान हूँ, कभी भी किसी से भी पराजित नहीं होता हूँ। मेरा धन प्रकृति भी किसी के अधीन नहीं होता। मैं कभी भी मृत्यु का शिकार नहीं होता। सोम तैयार करते हुए हे यजमानो। मुझसे ही धन की याचना करो। मेरी मैत्री में रहते हुये तुम्हें कोई हानि नहीं होगी।

अब एक अन्तिम ऋचा रखकर विषय को विराम देते हैं।

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपे ऋते।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति। विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।
ऋ. 10.86.12.

भावार्थः-हे प्रकृति शक्ति। मैं परमेश्वर अपने मित्र जीव के बिना इस जगत् में नहीं रमता। मेरा यह जगत् परमाणुओं से बना हुआ है। जीवों का प्रिय एवं भोग्य हुआ उनकी इन्द्रियों से ग्रहीत होता है। प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म एवं उत्कृष्ट है। इति।

श्री अरुण जी सुपुत्र स्व० श्री राम कुमार आर्य ने नव निर्मित अपनी कार्यशाला का उद्घाटन वैदिक रीति से किया

प्रधान डॉ० सूर्यकान्त शोरी जी की देख-रेख एवं कुशल मार्गदर्शन में आर्य समाज बरनाला द्वारा वेद प्रचार का कार्य निर्विघ्न रूप से चल रहा है। दिनांक 26.05.2013 को सायं 5.00 बजे श्री अरुण जी ने रायकोट रोड पर स्थित अमला सिंह वाला में अपनी नव-निर्मित कार्यशाला का उद्घाटन अग्निहोत्र द्वारा वैदिक रीति से सम्पन्न करवाया। पुरोहित श्री रणजीत शास्त्री जी ने यज्ञोपरान्त अपने प्रवचनों द्वारा यज्ञ के महत्त्व को समझाते हुए यज्ञमान परिवार को आशीर्वाद प्रदान किया। श्री राम चन्द्र आर्य ने अवसर अनुकूल सुमधुर भजन सुनाया। श्री हरमेल सिंह जोशी, श्री भारत भूषण मैनन ने अपने वक्तव्य में यज्ञमान परिवार को बधाई देते हुए उपस्थित श्रोताओं को वैदिक परम्परा अपनाने के लिए प्रेरित किया। अन्त में प्रधान श्री डॉ० सूर्यकान्त शोरी जी ने श्री अरुण जी एवं उनके परिवार का आर्य समाज के प्रति विशेष योगदान के लिए भूरि-भूरि प्रशंसा की एवं ऐसे कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए सभी का धन्यवाद किया। श्री राम कुमार सोबती, श्री प्रदीप कुमार जी, श्री कमल प्रकाश शर्मा जी, श्री चन्द वर्मा, श्री राजीव (बरनाला) तथा बरनाला एवं अमला सिंह वाला के अन्य गणमान्य महानुभाव उपस्थित थे। शान्ति पाठ के साथ कार्यक्रम का समापन किया गया। **-तिलक राम मंत्री आर्य समाज**

डॉ. भारतीय जी के जन्म ग्राम परबतसर में आर्य समाज स्थापित

राजस्थान के नागौर जिले के परबतसर ग्राम में गत दिनों स्वामी सुमेधानन्द जी (पिपराली आश्रम) के कर कमलों द्वारा आर्यसमाज की स्थापना रेलवे स्टेशन के निकट के भवन में की गई। इसका सम्पूर्ण श्रेय इसी ग्राम के आर्य पुरूष श्री जस्साराम जी को है जिन्होंने इस अवसर पर वानप्रस्थ की दीक्षा ली। तृतीय आश्रम में वे यश मुनि कहलाएंगे। स्मरण रहे कि परबतसर में 1928 में प्रसिद्ध आर्य विद्वान लेखक डॉ. भवानीलाल भारतीय का जन्म हुआ था जहां उनके पिता स्व. फकीरचन्द जी वकालत करते थे। इस नव स्थापित आर्यसमाज में एक ब्रह्मचारी जी स्थायी रूप से रहते हैं और नित्य यज्ञ सम्पन्न होता है। परबतसर में अधिकतर वैष्णवों का निवास है। वर्षों पूर्व यहां के आर्यसमाजी स्व. दानमल जी सिंधवी से सत्यार्थप्रकाश की प्रति लेकर भारतीय जी ने ऋषि दयानन्द की विचारधारा स्वीकार की थी। अपने जन्म ग्राम की इस आर्यसमाज को डॉ. भारतीय ने अनेक पुस्तकों से युक्त एक स्टील अलमारी भेंट की है। ध्यान रहे कि इन पुस्तकों में चारों वेदों का चौदह खण्डों में वेदों का पं. जयदेव शर्मा विद्यालंकार रचित भाष्य भी है। परबतसर में यह प्रथम अवसर है जब आर्यसमाज मंदिर में चारों वेदों की स्थापना हुई है। **-डॉ. गौरमोहन, मंत्री आर्यसमाज, श्रीगंगानगर**

वैदिक विवाह सम्पन्न

मण्डी डबवाली आर्य समाज के प्रधान श्री सन्तोष कुमार दुआ के सुपुत्र आयुष्मान् विपल तथा सौभाग्यवती चुनेश सुपुत्री श्री मदन मोहन भल्ला राजपुरा (पंजाब) निवासी का शुभ विवाह पूर्ण वैदिक रीतिनुसार राजपुरा में सम्पन्न हुआ। विवाह संस्कार आर्य समाज सैक्टर-16 चण्डीगढ़ के पुरोहित पंडित दाऊदयाल शर्मा जी के पौरोहित्य में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। संस्कृत में प्रकाशित आमन्त्रण पत्र की सबने सराहना की। **-अशोक आर्य**

श्रद्धांजलि सभा

आर्य समाज महर्षि दयानन्द मार्ग बीकानेर सत्संग के पश्चात् आयोजित श्रद्धांजलि सभा में करौथा (रोहतक) में दिनांक 11 मई 2013 को कबीर पंथी रामपाल के सतलोक आश्रम को हटाने के सम्बन्ध में किए गए शांतिपूर्ण आन्दोलन में पुलिस द्वारा की गई फायरिंग में शहीद हुए गुरुकुल, लाढ़ौत के उपाचार्य श्री उदयवीर शास्त्री, शाहपुर गांव के श्री संदीप कुमार एवं करौंथा गांव की वीरांगना श्रीमती प्रोमिला देवी को भावभीनी श्रद्धांजलि दो मिनट का मौन रखकर दी गई तथा उनकी आत्मा की शांति के लिए तथा सद्गति के लिए तथा परिवार जनों को इस दारुण दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करने के लिए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना की गई। मंत्री महेश सोनी ने इस वीभत्स हत्याकाण्ड की घोर निन्दा की तथा दोषियों को सजा देने की मांग की। उन्होंने आगे कहा कि धर्म की रक्षा करते शहीद होने वाले अमर एवं यशस्वी होते हैं। इनका शरीर नष्ट हो जाने पर भी यशरूपी शरीर में हमारे बीच हमेशा जीवित रहेंगे! **-महेश सोनी मंत्री**

रजि. नं. पी.बी./जे.एल-/0011/2012-14 RNI No. 26281/74

वेद वाणी

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत॥

-ऋ० ८।१।१; सा० पू० ३।१।५।१०; सा० उ० ६।१।५।१; अथर्व० २०।८५।१

विनय- भाइयो! उस प्रभु के सिवाय इस संसार में हमारा कोई अन्य स्तुति करने योग्य नहीं है। किसी भी अन्य की स्तुति करने से हमारा कुछ बनेगा नहीं। और हम जो यूँ हर दिन बोलते रहते हैं, उससे अपनी हानि ही करते हैं। जो वाणी प्रभु सेवा के उद्देश्य से उच्चारण नहीं की जाती, जो परमात्मा को साक्षी रखकर नहीं बोली जाती, जिसका प्रभु से कोई सम्बन्ध नहीं होता, ऐसी सब हमारी वाणी न केवल वृथा है, किन्तु हमारा नाश करने वाली है। जैसे मेंढक के टर-टर करने का कुछ परिणाम नहीं होता सिवाय इसके कि साँप को अपने भक्ष्य का पता मिल जाता है, उसी तरह मनुष्य अपने निरर्थक और परमेश्वरहीन प्रलापों के करते रहने से काल का शीघ्र ग्रास हो जाता है। इसलिए हे मनुष्य-जन्म पाने वालो! हे सखाओ! तुम यूँ ही विनष्ट होते हो? अपने प्रभु के सिवाय अन्यों की स्तुति करके क्यों हिंसित होते हो? स्वार्थ, हिंसा, राग, द्वेष से भरी वाणियाँ बोल-बोलकर क्यों हिंसक बनते हो और फलतः स्वयं विनष्ट होते जाते हो? यदि तुम निरन्तर प्रभु नाम नहीं ले सकते, तो कम से कम चुप रहो, पर किसी अन्य असत्य की स्तुति तो न करो। ऐसी वाणी तो न बोलो जो तुम्हें प्रभु से हटाकर विनाश की तरफ ले जाने वाली हो। इसलिए भाइयो! जागो, आज से एकमात्र उस इन्द्र की ही दिन-रात स्तवन करो, सब अभीष्टों के बरसाने वाले सर्वशक्तिमान् केवल उस परमेश्वर की ही स्तुति कीर्तन करो। इस संसार-यज्ञ में सम्मिलित हुए सब साथी मिलकर उसी परम प्रभु के स्तोत्रों को गुंजाओ, अपने प्रत्येक यज्ञकर्म में उस इन्द्र का ही नम्र होकर गुणगान गाओ। जरा देखो, उस वृषण प्रभु के सिवाय इस संसार में और कौन है जो हम पर सब सुखों और अभीष्टों को बरसा रहा है? हम यूँ ही मूर्खतावश कभी किसी मनुष्य, स्वामी व राजा को या किसी अन्य शक्ति को समर्थ समझकर उसकी स्तुति में लग जाते हैं, परन्तु देखो! उस सर्वसमर्थ परमेश्वर के सिवाय हमारा और कौन है जो हमें सब कुछ प्रदान कर सकता है? अतः आओ! अब हम सदा उसके ही गीत गाएँ और सब कुछ भूल जाएँ, मस्त होकर उसके ही स्तोत्र बार-बार सुनाएँ, प्रेम से गद्गद होकर उसके ही गीत निरन्तर गाते जाएँ।

-साभार वैदिक विनय, प्रस्तुतिः रणजीत आर्य

अश्रुपूरित श्रद्धांजलि ''दानवीर'' हरि नारायण जी सोनी को

कलकत्ता प्रवासी हमारे प्रिय दानवीर हरि नारायण जी के आकस्मिक एवं असामयिक दिवंगत होने का समाचार सुनकर हम सभी स्तब्ध रह गए क्योंकि हम तो आगामी वर्ष मनाए जाने वाले शताब्दी समारोह में सम्मान करने जा रहे थे।

आपने महर्षि कपिल मुनि की तपोभूमि श्री कोलायत में अपनी भूमि के अग्रभाग (मुख्य भाग) में से इस आर्य समाज को 25000 वर्ग फीट भूमि (दिनांक 16-6-2008 को 800 वर्ग फीट तथा फिर दिनांक 15-2-2010 को 1700 वर्ग फीट) देकर इतिहास रचा था। आपकी बुलन्द आवाज़, ओजस्वी, तेजस्वी मुखमण्डल तथा हृष्ट-पुष्ट शरीर हर किसी को आकर्षित किए बिना नहीं रहता। आपकी स्पष्टवादिता भी अपना अलग ही प्रभाव रखती थी। आप जब भी बीकानेर पधारते इस आर्य समाज में अवश्य पधारते। आप कोलकाता में कोन्न नगर आर्य समाज तथा अन्य आर्य समाजों से भी जुड़े हुए थे। आप आयुर्वेदाचार्य भी थे तथा जड़ी बूटियों का विशेष ज्ञान था तथा कोलायत की भूमि में भी जड़ी-बूटियां उगाने की आपकी योजना थी किन्तु मात्र 60 वर्ष की अल्प आयु में दिवंगत होने से यह योजना पूरी नहीं हो पाई।

''दानवीर'' हरि नारायण जी सोनी जैसे महानुभावों के लिए ही कहा गया है-ऊर्णाभद्रा पृथ्वी दक्षिणावते अर्थात् दानी के लिए मातृभूमि मुलायम ऊन की तरह सुखदायी होती है।

दानेन प्राप्यते स्वर्गः दान से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

धमार्थ काममोक्षणां दान हि साधन परम्ः। अर्थात् दान ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उत्तम साधन है।

इस दारूण दुःख की घड़ी में परिवार जनों से अनुरोध है कि योगीराज श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए उपदेश-''हे अर्जुन! जिनका जन्म होता है, उसकी मृत्यु अवश्य होती है और जिनकी मृत्यु हुई है उसका जन्म भी अवश्य होगा। इसलिए अनिवार्य विषय पर तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए।'' का धैर्यपूर्वक मनन करना ही होगा क्योंकि अब दुःख सहन करने के अलावा कोई मार्ग नहीं है तथापि इनके दिवंगत होने से न केवल परिवार की बल्कि आर्य समाज की अपूरणीय क्षति हुई है।

हरि जी दानवीर होने से यशस्वी हैं। शास्त्रों में कहा गया है-नरः पतित कायोऽपि यशः अर्थात् शरीर नष्ट हो जाने पर भी मनुष्य यशरूपी शरीर में जीवित रहता है।

अंत में दो मिनट का मौन रखकर उनकी आत्मा की शांति और सद्गति की प्रार्थना की गई। -आर्य समाज बीकानेर

गुरुकुल का आयुर्वेद महान
घर-घर में मिले रोगों से निदान

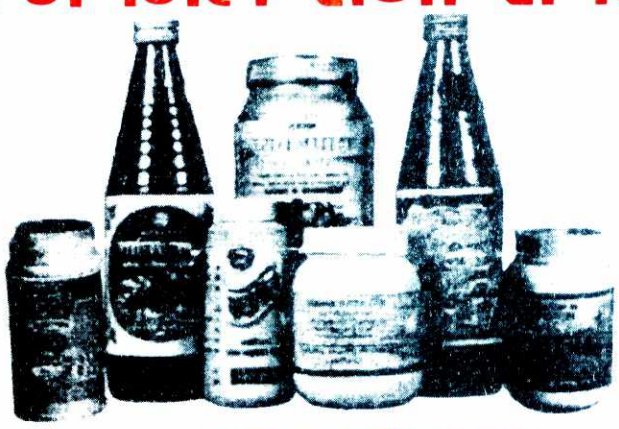

100 गुरुकुल शताब्दी

गुरुकुल च्यवनप्राश
सभी के लिए स्वादिष्ट, रुचिकर, पौष्टिक रसायन।

गुरुकुल पायोकिल
पायोरिया की आयुर्वेदिक औषधि
दांतों में खून रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे, मसूड़ों के रोग, ढीले दांत ठीक करे।

गुरुकुल मधु
गुणवत्ता एवं ताज़गी के लिए

गुरुकुल चाय
खाँसी, जुकाम, इन्फ्लूएंजा व थकान में अत्यंत उपयोगी।

गुरुकुल शतशिलाजीत सूर्यतापी
पुष्टीदायक, बलवर्धक
शरीर में नया खून और उत्साह का अनुभव

गुरुकुल ब्राह्मी रसायन
बुद्धिवर्धक, स्फूर्तिदायक, दिमागी कमजोरी दूर करे।

गुरुकुल मधुमेह नाशिनी गुटिका
मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक

अन्य प्रमुख उत्पाद
गुरुकुल द्राक्षारिष्ठ
गुरुकुल रक्तशोधक
गुरुकुल अश्वगंधारिष्ट

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार डाकघर : गुरुकुल कांगड़ी-249404, ज़िला-हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : 0134-416073

शाखा कार्यालय : 63, गली राजा केदार नाथ, चावड़ी बाजार, दिल्ली-6, फोन : 23261871

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।